धर्म और सामाजिक समन्वय

डॉ. एम. डी. थॉमस

भारत और धर्म-परंपरायें

भारत धार्मिक परंपराओं के लिये जगज़ाहिर है। धार्मिक देश के रूप में उसकी एक अनूठी पहचान बनी हुई है। धर्म की अनेक छोटी-बड़ी विचारधारायें, मान्यतायें और परंपरायें भारत में प्रचलित हैं। उनमें कुछ भारत में पैदा हुई थीं और कुछ भारत के बाहर। लेकिन, ये सभी परंपरायें भारत की अपनी हैं। भारत के नागरिकों की जीवन-शैली को प्रभावित करने में और उनकी जिंदगी को दिशा देने में इन परंपराओं की अहम् भूमिका रही है। इतना ही नहीं, इन विविध धार्मिक परंपराओं के योगदान से ही भारत की संस्कृति इतनी समृद्ध और खास बनी हुई है। सभी धर्म-परंपराओं की अपनी-अपनी खूबियाँ हैं। उन परंपराओं में से अगर एक भी हटा दी जाये तो भारत की अखंडता और एकता पर आंच आयेगी, यह निश्चित है। असल में, धार्मिक परंपराओं की यह विविधता भारत की पूँजी है। यह उसकी सम्मिलित साँस्कृतिक धरोहर है। इसलिये भारत देश में धर्म की चर्चा सर्वधर्म संदर्भ में ही प्रासंगिक लगती है।

धर्म का स्वरूप

सामान्य अर्थ में, धर्म 'जुड़ने-जोड़ने' का नाम है। धार्मिक भावना इन्सान को खुद से, खुदा से और औरों से जोड़ता है। धर्म का खास तात्पर्य 'कर्तव्य' से है। राजधर्म, प्रजाधर्म, पितृधर्म, मातृधर्म, भ्रातृधर्म, मानव धर्म, आदि शब्दों का इस्तेमाल इसी अर्थ में किया जाता है। उपर्युक्त तीनों दिशाओं में जुड़ना हर इन्सान का कर्तव्य ही है। धर्म का भीतरी अर्थ 'धारण करना' है। धारण व रने का मतलब है, 'अपनाना' या 'उत्तरदायित्व लेना'। सही मायने में धार्मिक होने के लिये हरेक को खुदा के साथ-साथ अपने जीवन से, दूसरों के जीवन से और समूची सृष्टि से जुड़ना होगा, उसे अपनाना होगा और उसका उत्तरदायित्व लेना होगा। और तो और, 'धर्म-बोध' ऐसी एक जीवन शैली है जिसमें दूसरों के प्रति 'कर्तव्य' की भावना बुलंद रहती है। धर्म इन्सान का 'स्वभाव' भी है और उसकी 'अंतरात्मा की आवाज़' भी। व्यक्ति और व्यक्ति के बीच तथा समुदाय और समुदाय के बीच समन्वयात्मक 'आपसी व्यवहार' में धर्म का असली स्वरूप उभरकर आता है।

धर्म जीवन का गुणदर्शन है

धर्म सिर्फ अनुष्ठानों का एक मायाजाल नहीं है, वरन् मानवीय जीवन का गुणदर्शन है। धर्म का बाहरी रूप अत्यंत आवश्यक है; फिर भी, उसका भीतरी दृष्टि ज़्यादा महत्वपूर्ण है। धर्म की परंपराओं में अपनी-अपनी निजी पहचान के साथ-साथ एक सम्मिलित पहचान भी होती है, जो उन्हें एक समान धरातल प्रदान व रता है। यह उनकी आध्यात्मिक पहचान है। मिसाल के तौर पर, ईसाई जगत के फ्रान्सीस ऑफ़ असीसी की प्रार्थना 'हे प्रभु, मुझो शांति का माध्यम बना दे' में ईसाइयत की अलग पहचान न होकर मानवमात्र की सामूहिक पहचान ही नज़र आती है। दूसरों वी भलाई के वास्ते कुछ बनने की तमन्ना इस प्रार्थना में झालकती है। इसमें अध्यात्म की ऊँचाई भी देखी जा सकती है। यही है ज़िंदगी का मकसद भी। यह इन्सान की गुणात्मक सोच का ही परिणाम है। 'इन्सानियत' की भावना में धार्मिक परंपराओं की सम्मिलित अस्मिता है। 'धर्म इन्सान के लिये है', यही ईसा की मान्यता है (मत्ती 15.10, पृष्ठ 50)। धर्म ज़िंदगी का केंद्र नहीं, वरन् ज़िंदगी धर्म का केंद्र है। धर्म के लिये जीना या मरना बेतुक बात है। महात्मा कबीर की बात 'सार-सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय', इस संदर्भ में पूरी तरह से सार्थक है। धर्म के भीतरी तत्व को अपनाना और बाहरी चीज़ों को गौण समझाना ही जायज है। धर्म हकीकत में जीवन का अनुशासन है। अनुशासन भीतरी गुणों से

बनता है। धर्म इन्सान के लिये एक विचारधारा और जीवन-शैली बने तथा एक अनुशासन और व्यवहार बने, यही धर्म का गुणदर्शन है।

धर्म समाजिक दृष्टिकोण है

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। धर्म उस मनुष्य का जीवन-दर्शन है। यह उसकी सोचने की प्रक्रिया है। यह उसके द्वारा जीवन को समझाने का दृष्टिकोण है। धर्म का धरातल समाज है। यह जीवन को भीतर से झाँकने-समझाने की पद्धति है। मानवीय व्यवहार को अर्थ और दिशा देना धर्म का लक्ष्य है। इसलिये यह कहना जायज लगता है कि धर्म एक समाज-दर्शन है। समाज को देखना, समझाना और उसका विश्लेषण करना उस दर्शन की भूमिका है। सामाजिक विचार-प्रक्रियाओं को प्रभावित करना उसका काम है। समाज की समस्याओं के निदान की खोज करना भी उसका फ़र्ज़ है। समाज की प्रगति उसकी मंजिल है। समाज के कल्याण में उसकी भलाई है। समाज के विकास में उसका विकास है। हकीकत में, समाज की रहनुमाई करके मानव जीवन को लक्ष्यपूर्ण बनाना धर्म का काय है। सृष्टि के रचयिता को तलाशना और उस आस्था की छत्रछाया में इन्सान की सामाजिक ज़िंदगी को संतुलित बनाये रखने में धर्म की सार्थकता है।

धर्म एक यात्रा ह

धर्मावलंबियों की विडंबना है कि वे इस सोच के शिकार हो जाते हैं कि वे रचयिता के बारे में सब कुछ जानते हैं। वे धर्म-पण्डितों के बनाये हुए सिद्धांतों और अनुष्ठानों में ऐसे रम जाते हैं जैसे मकड़ी अपने बनाये जाल में फ़ँसी रहती हैं। भावुकता की प्रबलता के कारण वे अपनी आदतों से चिपक जाते हैं और बदलाव वी उम्मीदों से दूर हो जाते हैं। प्रसिद्ध धर्म-चिंतक केनेत लीच का कहना है, 'खुदा हमेशा हम से आगे है'। खुदा की तलाश में जितना आगे बढ़ा जाय, लगता है कि खुदा उतना और उससे भी ज़्यादा आगे है। खुदा को सतत टटोला जाय, यही धर्म की प्रक्रिया है। इसलिये धर्म-विचार को चलते रहने की जरूरत है। कविगुरु रवींद्र नाथ ठाकुर की मंशा थी कि वे ईश्वर को 'नित्य नये-नये रूपों में' देखे। खुदा का एक रूप नहीं होता; उसके अनगिनत रूप होते हैं। उसके नये-नये रूपों की तलाश ही धर्म की साधना है। नयेपन की यह चाह ही जीवन की जीवंतता की पहचान भी है। धर्म-साधना असल में एक ऐसा सफ़र है। नयी सोच होती रहे, नयी व्याख्या होती रहे, नयी पहल होती रहे और नयी दिशा की ओर ज़िंदगी चलती रहे, जिंदगी की रफ़्तार बनी रहे, इसी में धार्मिक यात्रा की सार्थकता है।

धर्म मूल्य-चेतना है

धर्म के विषय में विश्वप्रसिद्ध चिंतक बर्नाड शा का विचार ध्यान देने योग्य है। 'यदि आप वास्तव में कुछ करना चाहते हैं तो आपका कोई धर्म होना चाहिये'। उनका मतलब यह कदापि नहीं है कि इन्सान को धर्म-सिद्धांतों को मानना चाहिये या धर्मानुष्ठानों में लगे रहना चाहिय। उनका तात्पर्य ज़ाहिर तौर पर यह है कि 'धर्म प्रेरणा देनेवाली चीज़ है'। जो भी यह दावा करता है कि मेरा कोई धर्म है या धर्म में मेरा विश्वास है, वह अपने धर्म से प्रेरणा ले और ज़िंदगी को सार्थक तरीवे से जिये। यह भी ज़रूरी है कि इन्सान धर्म से सद्भाव पैदा करे और उसे दूसरों से रिश्ता जोड़ने के लिये इस्तेमाल करे। पोप जोन पॉल ने धर्म की सटीक परिभाषा करते हुए कहा, 'जो भलाई, तालमेल और शांति का स्रोत है, वही धर्म है'। धर्म मनुष्य को खुद की परख और खुदा की पहचान के साथ-साथ औरों से संबंध बनाने की दिशा में प्रवृत्त करनेवाली चीज़ है। 'बेहतर इन्सान बनाना' धर्म का गंतव्य है। फिल्म 'माइ नेइम ईज़ खान' में इस बात की ओर प्रेरणा दी जाती है। उसके एक प्रसंग में माँ अपने बटे को 'अच्छा इन्सान बनने' की नसीहत और प्रेरणा देती हुई नज़र आती है। श्री नारायण गुरु ने धर्म की चरम प्रासंगिकता पर रोशनी डालते हुए कहा, 'मज़हब हो कोई भी, इन्सान भला सो भला'। अपनी-अपनी धार्मिक आस्था से प्रेरणा लेकर भला इन्सान बन जाये, इसी में धर्म की भलाई है। कोई अच्छा मनुष्य बन न पाये तो धर्म-कर्म से क्या लाभ! धर्म को मानव मूल्य और आध्यात्मिक मूल्य को बढ़ावा देनेवाला तत्व बना रहना श्रेयसकर है। ऐसी मूल्य-चेतना का ही इंतज़ाम धर्म है।

धर्म सर्व-मूल्यों का समुच्चय है

असल में धर्म एक परंपरा के मूल्य न होकर विविध धार्मिक परंपराओं में मौजूद सार्वभौम और सार्वजनिक मूल्यों का समावेश है। धर्म की किसी एक धारा में ही सीमित रहने से असली धार्मिक भावना या आस्था पनप नहीं सकती। जिस प्रकार मधुमक्खी सैकड़ों फूलों से मकरंद ग्रहण करती है, ठीक इसी प्रकार आस्थावान शख्स भी विविध धार्मिक और गैर-धार्मिक परंपराओं से मूल्यों को ग्रहण करता है। साथ ही, जैसे मधुमक्खी के छत्ते से प्राप्त मधु का कोई मुकाबला नहीं होता, ठीक वैसे ही सर्व-मूल्यों के मिश्रण से बना अध्यात्म भी अतुलनीय रूप से गुणात्मक रहेगा। समूची धाराओं से मूल्यों को स्वीकारना 'सर्व-गुणग्राहिता' है। यही मधुमक्खी का भी स्वभाव है। विस्तार में नहीं जाते हुए यही कहा जा सकता है कि हिंदू, इस्लामी, ईसाई, पारसी, यहूदी, सिक्ख, जैन, बौद्ध, बहाई, ताओ, शिंटो, कन्फ्यूशियन, आदि परंपराओं में बहुतेरे अनूठे मूल्य विद्यमान हैं। वे सार्वभौम और सार्वजनिक हैं। वे महज तत्संबंधी समुदाय के लिये न होकर सब मनुष्यों के लिये हैं। वे लोक-संग्रह के मूल्य हैं और सब लोगों पर बराबर लागू होते हैं। वे मानवमात्र की भलाई के लायक व्यंजन है और सब के लिये मूल्य साबित होते हैं। मानव जीवन के पगडण्डियों तथा रोजमर्रा की राहों से उभरे ये मूल्य उसके सहज अध्यात्म के जीवंत लक्षण ही हैं। इस दृष्टि से धर्म एक परपरा न होकर अनगिनत परंपराओं का त्रिवेणी संगम है, ऐसा कहना ही तर्कसंगत है।

धर्म समन्वयात्मक जीवनदृष्टि है

धर्म का मर्म समन्वय-भाव है। इसमें 'मेल-जोल', 'बराबरी', 'पूर्णता', 'एकरसता', 'समरसता', 'तालमेल', 'संतुलन', 'एकता', आदि के भाव हैं। इसमें 'सद्भाव, समभाव, सम्मान, सहयोग और समन्वय' की भावना भी है। यह 'एक और अनेक' का संगम है। जैसे 'एक शरीर' 'अनेक अंगों' द्वारा कार्य करता है और 'अनेक अंग' 'एक शरीर में' समाहित होकर रहते हैं (1 कोर 12.12-28), ठीक वैसे ही विविध धाराएँ एक दूसरे के संग ही अपना संतुलन बनाये रखती हैं। आपसी पूरकता या एकजुटता धर्म और समाज की कुशलता का रहस्य है। 'इंद्रधनुष' के रंगों की विविधता में और उसके मेलजोल में जैसी खूबसूरती है, ठीक वैसी ही सुंदरता जीवन के समन्वय-भाव में निहित है। केरल के दार्शनिक, अध्यात्मवादी और समाज-सुधारक श्री नारायण गुरु ने अपने समन्वयवादी दृष्टिकोण को ज़ाहिर करते हुए कहा, 'एक धर्म, एक जाति और एक ईश्वर'। 'एक नज़रिये से सब कुछ को देखना' समन्वय का भाव है। संत कवि दादू दयाल की दो पंक्तियाँ जीवन की 'समग्र दृष्टि' और 'भीतरी दृष्टि' को एक साथ उज़ागर करती हैं - 'दादू पूरन ब्रह्म बिचारिये, तव सकल आत्मा एक। काया का गुण देषिये, तव नाना बरन अनेक'।। इसी बात को कैथलिक ईसाई समुदाय के पूर्व-प्रमुख स्वर्गीय पोप जोन 23 ने इन शब्दों में कहा, 'वी हैव टु लुक एट ह्वाट युनाइट्स पीपिल रादर दैन ह्वाट डिवाइड्स देम', अर्थात् एक-दूसरे से अलग करनेवाली बातों के बजाय आपस में जोड़नेवाली चीज़ों की तलाश की जानी चाहिये। 'हमारा' वा भाव समन्वय का केंद्रीय तत्व है। खंडित मानसिकता से ऊपर उठने पर समन्वय की भावना हासिल होती है। धार्मिक और सामजिक जीवन की सार्थकता इस उपलब्धि में पायी जाती है।

धर्म आपसी सरोकार है

संसार की भिन्न-भिन्न धर्म-परंपराएँ 'द्वीपों के समान' एक दूसरे से अलग होकर वजूद नहीं रख सकती हैं। वे 'समान्तर-रेखाओं के समान' खुदा की साधना में अकेले नहीं चल सकती हैं। 'इन्द्रधनुष' के विविध रंगों के समान विभिन्न समुदायों को सम्मिलित रूप से रहना होगा। भिन्न-भिन्न मूल्यों के समन्वय से ही मानव-जीवन में समृद्धि और खूबसूरती आ सकती हैं। आपसी सरोकार और सहयोग की तहज़ीब से ही बेहतर समाज का निर्माण हो सकता है। एक-दूसरे के लिये मौजूद रहना आपसी सरोकार का भाव है। विविध धर्म-परंपराएँ एक दूसरे के लिये आइने के समान हैं। विविधता सब के लिये आत्म-निरीक्षण और बढ़ोत्तरी का एक कुदरती इंतज़ाम है। आपसी संवाद में हर एक परंपरा को खुद को शुद्ध करने और समृद्ध करने का मौका हासिल होता ह। दोनों में बदलाव इसका परिणाम है। बेहतर होना ज़िंदगी का नियम है। साथ-साथ चलना धर्म-परंपराओं केलिये दरकार है। उन्हें एक दूसरे के साथ मिलकर समाज को परिष्कृत करने केलिये काम करना होगा। उनका विकास अपने आप में सृष्टिकर्ता इश्वर

की ओर चलनेवाली एक सम्मिलित तीर्थ-यात्रा है। इस धार्मिक यात्रा में हर मुसाफ़िर साथी मुसाफ़िरों के साथ आपसी सरोकार से बंधे हुए चले, यही करणीय है।

धर्म सामाजिक ज़िम्मेदारी है

'क्या मैं मेरे भाई या बहन का रखवाला हूँ?' यह एक ऐसा सवाल है जिसके जवाब से सामाजिक जवाबदारी की परिकल्पना स्पष्ट हो जाती है। धर्म की दो बाहरी दिशाएँ होती हैं — ईश्वर की तरफ़ और दूसरों की तरफ़। अक्सर लोग खुदा के लिये कुछ भी करने को मुस्तैद दिखाई देते हैं। लेकिन, ईश्वर को किस चीज़ की जरूरत होती है? वास्तव में, जरूरतें होती हैं इन्सान को। आखिर, यह समझाना होगा कि 'जो इन्सान के लिये किया जाता है वही ईश्वर के लिये भी किया जाता है'। 'इन्सान की सेवा ही हकीकत में ईश्वर की पूजा' है। असल में, सामाजिक ज़िम्मेदारी की भावना में धर्म की प्रासंगिव ता सिद्ध होती है। अब प्रश्न यह है कि क्या अपना-अपना धर्म मानवमात्र की सेवा करने की प्रेरणा देता है क्या नहीं? यह प्राय: देखा जाता है कि ज्यादातर लोग 'एक्ट आफ़ ओमीशन' या 'कुछ नहीं करने' के गुनहगार हैं और कमतर लोग 'एक्ट आफ़ कमीशन' या 'कुछ (गलत) करने' के। लोग समाज में रहकर खुद की रखवाली करते हैं और समाज को अपने लिये इस्तेमाल करने की कोशिश करते हैं। जरूरत इस बात की है कि लोग 'जीओ और जीने दो' के सटीक जैन दर्शन का सख्ती से पालन करें। साथ ही, उससे भी आगे बढ़कर दूसरों को 'जीने की मदद करो' की सामाजिक ज़िम्मेदारी के नियम पर अमल करें। इस भावना को सब की ओर, खास तौर पर जरूरतमंदों की ओर, बुलंद किया जाना चाहिये। सही मायने में धार्मिक परंपराओं की यही प्रासंगिकता है। इक्कीसवीं शती में धार्मिक परंपराओं का भविष्य भी ऐसी सोच में निहित है।

धर्म सांप्रदायिक सद्भाव है

इन्सान अलग-अलग है। उसके नज़रिये और विचार भिन्न-भिन्न हैं। इसलिये विभिन्न समुदायों के बीच छोटी-मोटी झाड़पों का होना कोइ बड़ी बात नहीं है। स्वार्थ, गलतफ़हमी, दुर्भाव, आदि की वजह से कतिपय समुदायों पर छोटे और बड़े पैमाने पर हमले होते रहते हैं। इस वजह से, समुदायों के दरमियान दरार का बढ़ना भी स्वाभाविक है। फिर भी, सांप्रदायिक सद्भाव को बनाये रखने केलिये संबधित लोगों को चाहिये कि वे ऐसी दुर्घटनाओं से सबक सीखें। मुश्किल होने पर भी, हमला करनेवालों को ईसा की प्रार्थना 'पिता, उन्हें माफ़ कर दे, क्योंकि वे नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं' से प्रेरणा लेकर माफ़ करना, उस समुदाय के लोगों से बातचीत करना और उस प्रकार जख्मों को चंगा करना भी बेहद आवश्यक है। शासन का फर्ज है कि वह इस प्रकार की गुण्डागर्दी करने और करवानेवालों को कड़े-से-कड़े दण्ड दे। उसे ऐसी आपराधिक हरकतों को टालने व लिये सख्त कदम भी उठाने चाहिये। साथ ही, समुदाय-समुदाय को आपस में बाँटने की राजनीति करनेवाले गुटों और व्यक्तियों पर अंकुश रखा जाना चाहिये। अल्पसंख्यकों और कमज़ोर समुदायों की रक्षा करने में शासन को तरजीही तौर पर मदद भी करनो चाहिये। समाज में अनुशासन बनाये रखने में नागरिकों की भी बड़ी भूमिका है। बाबा बुल्ले शाह की बात 'टेइक एवे लव, एण्ड अवर एर्थ ईज़ ए टूम', अर्थात् 'प्यारहीन दुनिया कब्रस्तान है' बहुत सार्थक है। प्यार-मुहब्बत के भाव से आपस में जुड़कर सम्मिलित रूप से रहने की तहज़ीब को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। प्यार के इस धागे को टूटने न देना या यदि टूट जाये तो जोड़ना सांप्रदायिक सद्भाव को बढ़ाने की दिशा में कारगर कदम है। विभिन्न समुदायों के बीच फ़र्क नहीं किया जाये और उनमें समरसता बनी रहे, इस दिशा में सतत प्रयास किये जाने चाहिये। ऐसी पंथ-निरपेक्ष भावना की बुनियाद पर ज़िंदगी की इमारत को खड़ी करना ही सांप्रदायिक सद्भाव का मर्म है।

धर्म नागरिक चेतना में प्रतिफलित होता है

धर्म का बुलंद रूप किसी भी देश के लोगों के नागरिक होने की चेतना में प्रतिफलित होती है। भारत देश दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के साथ-साथ एक प्रबल धार्मिक देश भी है। इस कारण हर नागरिक में नागरिक होने की चेतना बुलंद होनी चाहिये। लेकिन हकीकत इससे कोसों दूर है। लंदन में एक बार एक बस स्टाप पर एक व्यक्ति को ज़मीन से एक कागज़ का

टुकड़ा उठाकर कूड़ादान में डालते हुए देखकर मैं अपनी नागरिक भावना की ओर चेताया गया। ऐसी भावना भारत में बिरले ही दिखाई देतो है। ऐसा लगता है कि काफ़ी लोग यह सोचा करते हैं कि गंदा करना मेरा हक है और साफ़ करना और किसी का फ़र्ज है। इसलिये खास तौर पर सार्वजनिक जगहें अक्सर गंदी पायी जाती हैं। यह बात हमारे धार्मिक और लोकतांत्रिक देश की व मज़ोरी की ही निशानी है। भारतीय संस्कृति का ढिंढ़ोरा पीटने के बजाय 'सब कुछ हमारे पास है' जैसी सोच को त्यागव र हमें इस संबंध में पश्चिमी देशों से सबक सीखना चाहिए। सार्वजनिक जगहों को साफ़ रखना नागरिक होने के नाते सबका कर्तव्य है। और तो और, अपने गुस्से को ज़ाहिर करने के लिये बहुत लोग लाखों और करोड़ों की लागत की सार्वजनिक संपत्ति वो नष्ट करने में हिचकते नहीं हैं। असल में यह नागरिक द्वारा किया जानेवाला सबसे हीन स्तर का पाप है। सबकी जगह अपनी जगह से भी पवित्र है, यह भावना धर्म और अध्यात्म की उपज है। सार्वजनिक जगहों के रख-रखाव में, चाहे वह शौचालय हो या सड़क, हर नागरिक को तत्पर रहना चाहिये। धार्मिक पर्व और शादी-ब्याह के अवसर पर लोग सड़क पर जुलूस निकालते हैं, यातायात व्यवस्था को चरमराते हैं और आम लोगों को असीम कष्ट पहुँचाते हैं। उच्चतम न्यायालय की मनाही के बावजूद लोग रात को भी ध्वनि-प्रसारण यंत्रों का बेहिचक उपयोग करके लोगों को परेशान करते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि उनको एहसास ही नहीं होता है कि वे बड़ा राष्ट्रीय जुल्म कर रहे हैं। राजनीति और शासन के तथाकथित 'अतिविशिष्ट' लोग अपना महत्व दिखाने के लिये यातायात में अवरोध पैदा करते हैं और यात्रियों को कष्ट देते हैं। असल में, दूसरों को तकलीफ़ देने से बचना ही नागरिक द्वारा ओरों के लिये की जानेवाली सबसे बुनियादी सेवा है। कानून-कायदे का कदर करने, यातायात-व्यवस्था को दुरुस्त बनाये रखने, सार्वजनिक जगहों की रख-रखाव में सभी 'नागरिकों की चेतना' बुलंद होनी चाहिये। ऐसी नार्गारक चेतना के माहौल में ही सामाजिक तालमेल कायम होगा और सांप्रदायिक सद्भाव मज़बूत होगा।

धर्म राष्ट्रीय एकता की बुनियाद है

देश के प्रति प्रेम और भक्ति धर्म-भावना का मर्म है। देश को अपना देश समझाकर देश की भलाई को मद्देनज़र कार्य करना देश के हर नागरिक का कर्तव्य है। धर्म-परंपराओं का अपना-अपना धर्म-ग्रंथ ज़रूर है। लेकिन, नागरिक होने के नाते 'संविधान' को 'राष्ट्रीय धर्म-ग्रंथ' मानना सब के लिये जायज है। संविधान की 'पंथ-निरपेक्ष भाव' के मुताबिक सर्व-धर्म सद्भाव को बनाये रखना चाहिये। 'राष्ट्रीय चेतना' राष्ट्रीयता की आत्मा है। जाति, जनजाति, भाषा, पेशा, संस्कृति, विचारधारा, मजहब, आदि को लेकर अलग-अलग समुदाय एक दूसरे से कटे न रहें, बल्कि एक देश के नागरिक के रूप में एक-दूसरे स जुड़े रहें और एकजुट रहें, यही राष्ट्रीयता की पहचान है। देश के विविध समुदायों द्वारा संयुक्त होकर राष्ट्र-निर्माण के लिये सहकारी योजनाएँ भी चलायी जानी चाहिये। मिलकर चलने से ही प्रगति संभव है। अंग्रेज़ी जगत के सुप्रसिद्ध कवि हेनरी वाड्सवर्थ लॉंगफ़ेलो की कविता 'ए साम ऑफ़ लाइफ़' की एक पंक्ति है जो इस संदर्भ में बेहद सार्थक है — 'बट, टु ऐक्ट थैट ईच टुमॉरो फाइण्ड्स अस फारदर दैन टुडै', अर्थात् प्रगति करते रहना, लेकिन साथ-साथ, यही ज़िंदगी का मकसद है। मेरी भलाई और उनकी भलाई को अलग-अलग नहीं करते हुए 'हमारी संयुक्त भलाई' समझाना और उस ओर चलते रहना ही प्रगति है। हिंदी फिल्म 'चक दे इन्डिया' अपने-अपने सीमित दायरे से आगे बढ़कर देश के स्तर पर एक विस्तृत अस्मिता को धारण करने की प्रेरणा देती है। बेहतर देश का निर्माण करने के लिये इस विचार से मानवोपयोगी योजनाएँ चलती रहें, 'गरीबी रेखा के नीचे' रहने वालों और भिखारियों का उद्धार होती रहें और राष्ट्रीय समाज की गुणवत्ता के लक्ष्य पर अमल होता जायें, यही राष्ट्रीय एकता का धर्म है। इस उद्देश्य से धार्मिक समुदाय के लोग कार्य करते रहें, एक-दूसरे से जुड़ जायें और शासन को सशक्त होने की मदद करे, यह राष्ट्रीय एकता की भावना को मज़बूत करने के लिये आवश्यक है। 'साझो संस्कृति' की भावना मंगलमय देश और समाज के निर्माण के लिये अनिवार्य है। धर्म की ऐसी समझा ही राष्ट्रीय एकता की बुनियाद है।

धर्म सामाजिक तालमेल है

समाजिक तालमेल को बढ़ानेवाला तत्व है धर्म। इसके लिये सब के साथ सदभाव रखना पहली बात है। दूसरे के क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करना और उन्हें कष्ट नहीं पहुँचाना दूसरी बात है। तुलसीदास ने इस बात को इन शब्दों में बड़े मार्मिव ढंग से

व्यक्त किया है,'परपीड़ा सम नहीं अधमाई, याने अन्यों को दर्द पहुँचाना सबसे हीन बर्ताव है। महात्मा कबीर सकारात्मक शब्दों में हिदायत देते हैं, 'बहता पानी निर्मला, बंदा गंदा होय; साधू जन रमता भला, दाग न लागे कोय'। मतलब है, धार्मिक व्यक्ति हो या सादा इन्सान, निर्मल रहना हो तो बहते पानी के समान एक दूसरे की ओर चलते रहे, यह ज़रूरी है। जमे हुए पानी के समान होना, चाहे धर्म हो या इन्सानियत, देश हो या समाज, दूषित और निरर्थक होने का निश्चित तरीका है। विविध विचारधाराओं, परंपराओं व समुदायों के लोगों के दरमियान दोस्ती तथा सहयोग हो, यही सामाजिक समन्वय है। विशेष रूप से बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों में संतुलन बनाये रखा जाना चाहिये। 'बेहतर इन्सान', 'बेहतर देश' और 'बेहतर समाज' को बनाने के लिय अड़ोस-पड़ोस के लोगों में सामुदायिक भावना का सृजन बुनियादी तौर पर अनिवार्य है। दूसरे समुदायों के लोगों की समस्याओं को समझाना और उनके निदान में हाथ बँटाना, उनको समृद्ध करने के लिये कारगर उपायों को अपनाना, धार्मिक और राष्ट्रीय पर्वों को मिल-जुल कर मनाना, महिलाओं और युवाओं की भागीदारी को बढ़ाना, बच्चों की परवरिश की ओर तरजीही तौर पर ध्यान देना, खास रूप में कमज़ोर तबकों के लोगों के कल्याण के लिये सहयोगात्मक योजनायें चलाना, आदि सामाजिक तालमेल की दिशा में महत्वपूर्ण धर्म-प्रेरित कदम हैं। सामाजिक समन्वय के मर्म को उज़ागर करनेवाली दो पंक्तियाँ इस संदर्भ में प्रेरणादायक अवश्य सिद्ध होंगी — 'चलते रहें, चलते रहें, इसी का नाम ज़िंदगी। मिलके चलें, साथ चलें, इसी में ज़िंदादिली।।'

डॉ. एम. डी. थॉमस
संस्थापक निदेशक, इंस्टिट्यूट ऑफ़ हार्मनि एण्ड पीस स्टडीज़, नयी दिल्ली
प्रथम मंजिल, ए 128, सेक्टर 19, सेक्टर 19, द्वारका, नयी दिल्ली 110075

दूरभाष: 09810535378 (p), 08847925378 (p), 011-45575378 (o)
ईमेल : mdthomas53@gmail.com (p), ihps2014@gmail.com (o)
बेबसाइट: www.mdthomas.in (p), www.ihpsindia.org (o)

Twitter: https://twitter.com/mdthomas53
Facebook: https://www.facebook.com/mdthomas53
Academia.edu: https://independent.academia.edu/MDTHOMAS